विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P15 : साहित्य का इतिहास दर्शन
इकाई सं. एवं शीर्षक	M 24: हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन और लेखन
इकाई टैग	HND_P15_M24
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. मैनेजर पाण्डेय
इकाई-लेखक	डॉ. प्रेमशंकर
प्रश्नपत्र समीक्षक	प्रो. गोपेश्वर सिंह
भाषा सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन और इतिहास चिन्तन
    - 3.1. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
    - 3.2. हिन्दी साहित्य में विविध प्रकार के इतिहास लेखन
    - 3.3. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन
        - 3.3.1. साहित्य का इतिहास दर्शन और नलिन विलोचन शर्मा
        - 3.3.2. जातीय साहित्य की समस्याएँ और इतिहास लेखन
        - 3.3.3. साहित्य के इतिहास की मार्क्सवादी दृष्टि
        - 3.3.4. साहित्येतिहास विरोधी दृष्टिकोण की पहचान
        - 3.3.5. साहित्य इतिहास की स्त्री दृष्टि
4. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- साहित्य के अनुशीलन में साहित्य के इतिहास का उपयोग समझ सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की जानकारी हासिल कर सकेंगे।
- हिन्दी में हुए साहित्येतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन के सन्दर्भ को जान सकेंगे।
- इतिहास-लेखन से साहित्य के इतिहास लेखन की भिन्नता एवं समानता को समझ सकेंगे।

2. प्रस्तावना

साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने के लिए साहित्य के इतिहास की आवश्यकता पड़ती है। हिन्दी में साहित्येतिहास लेखन की शुरुआत उन्नीसवीं सदी में हुई। फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की शुरुआत की। प्रत्येक इतिहासकार अपने परिवेश और उपलब्ध संसाधनों के आधार पर ही इतिहास लेखन करता है। उसका दृष्टिकोण भी इतिहास लेखन को प्रभावित करता है। समय के साथ अतीत के सन्दर्भ में नई जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। परिणामतः स्थापित मान्यताओं के मूल्यांकन की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। इतिहास से जुड़े इन सवालों पर विचार साहित्य-इतिहास चिन्तन के अन्तर्गत किया जाता है। हिन्दी में इस विषय पर चर्चा की बहुत गहरी परम्परा नहीं दिखलाई देती है।

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन और इतिहास चिन्तन

3.1. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन

आधुनिक ढंग से इतिहास लेखन की शुरूआत भारत में ब्रिटिशकाल में हुई। इसी के साथ भारतीय साहित्य, दर्शन, संगीत आदि कलाओं का भी नए तरीके से इतिहास लिखा जाने लगा। हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन औपनिवेशिक शासन और उससे मुक्ति के संघर्षों के बीच शुरु हुआ था। परिणामतः प्रारम्भिक काल में साहित्येतिहास लेखन पर जहाँ एक ओर औपनिवेशिक दृष्टिकोण का प्रभाव दिखा, वहीं दूसरी तरफ औपनिवेशिक मानसिकता विरोधी और राष्ट्रीय नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में विकसित होती इतिहास दृष्टि दिखी। गार्सा द तासी ने *'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर एन्दुई एन्दुस्तानी'* नाम से पहला इतिहास लिखा, जिसका पहला खण्ड सन् 1839 में और दूसरा खण्ड सन् 1847 में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् शिवसिंह सेंगर का *'शिवसिंह सरोज'* (सन् 1883) प्रकाशित हुआ। इसमें लगभग एक हजार रचनाकारों का जीवन चरित उनकी रचनाओं सहित वर्णित है। आगे चलकर सन् 1888 में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में जार्ज ग्रियर्सन का *'द मार्डन वर्नेक्युलर लिटरेचरऑफ हिन्दुस्तान'* का प्रकाशन हुआ। इसे ही वास्तविक अर्थ में हिन्दी का पहला इतिहास माना जाता है। ग्रियर्सन के बाद मिश्र-बन्धुओं ने चार खण्डों में *'मिश्रबन्धु-विनोद'* लिखा, जिसके तीन खण्ड सन् 1913 में और अंतिम खण्ड सन् 1919 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में लगभग पाँच हजार रचनाकारों का वर्णन है। इसमें वर्णित सामग्री का बाद के अनेक इतिहासकारों ने उपयोग किया, जिनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम भी शामिल है। मिश्र-बन्धुओं के बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने *'हिन्दी साहित्य का इतिहास'* (सन् 1929) लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया, जो नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित *'हिन्दी शब्द-सागर'* की भूमिका के रूप में लिखा गया। इस ग्रन्थ को हिन्दी साहित्येतिहास-लेखन परम्परा सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। आगे चलकर इस परम्परा को आचार्य

हजारीप्रसाद द्विवेदी, शिवदान सिंह चौहान, नगेन्द्र, रामखेलावन पाण्डेय, रमाशंकर शुक्ल, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी, चन्द्रगुप्त वेदालंकार, और सुमन राजे ने समृद्ध किया।

3.2. हिन्दी साहित्य में विविध प्रकार के इतिहास लेखन

हिन्दी साहित्य के इतिहास प्रायः एक ही जिल्द में लिखे गए हैं, किन्तु हिन्दी साहित्य का विस्तार इतना अधिक है कि उसे एक या दो जिल्दों में समेट पाना सम्भव नहीं है। हिन्दी साहित्य के विस्तार को हिन्दी साहित्य के घेरे में समेटने का प्रयास *'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास'* में किया गया है। *हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास* की योजना 'नागरी प्रचारणी सभा, काशी' ने संवत् 2010 में की। इस योजना के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के इतिहास को सतरह खण्डों में प्रकाशित करना था। इसकी योजना *'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ लिटरेचर'* के ढंग पर बनाई गई। हालाँकि इस इतिहास का निर्माण परम्परागत इतिहास चिन्तन पर ही आधारित है, फिर भी सामग्री की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है।

हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास लेखन के अतिरिक्त अन्य पद्धतियों में भी इतिहास लेखन किया गया : जैसे– हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों का इतिहास, साहित्य के विभिन्न सम्प्रदायों का इतिहास, विधाओं का इतिहास और क्षेत्र विशेष के साहित्य का इतिहास आदि।

3.3. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का प्रयत्न भले ही उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में शुरु हो चुका था, किन्तु साहित्येतिहास सम्बन्धी चिन्तन की परम्परा का विकास स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व नहीं हो सका। साहित्य के इतिहास को लेकर क्या दृष्टिकोण हो, पूर्ववर्ती इतिहासों की प्रासंगिकता और सीमा पर विचार करते हुए नए साहित्यिक इतिहास की क्या रूपरेखा बने, हिन्दी साहित्य के इतिहास का भारतीय साहित्य के इतिहास के साथ क्या सम्बन्ध हो, साहित्य के इतिहास के लिए क्या विश्वदृष्टि अपनाई जाए... आदि प्रश्नों पर विस्तार से विचार विमर्श बहुत बाद में सम्भव हो पाया। आज भी इस विषय पर पर्याप्त विचार नहीं हुआ है, जिसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि फिलहाल इस विषय पर हिन्दी में सिर्फ दो पुस्तकें ही उपलब्ध हैं। इस दिशा में सबसे पहले साहित्य चिन्तक नलिन विलोचन शर्मा ने *'साहित्य का इतिहास दर्शन'* (सन् 1960) नामक पुस्तक लिखकर पहल की। फिर सन् 1981 में मैनेजर पाण्डेय की प्रकाशित पुस्तक *'साहित्य और इतिहास दृष्टि'* का प्रकाशन हुआ। इनके अतिरिक्त नामवर सिंह की *'इतिहास और आलोचना'* रामविलास शर्मा की *'भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ', 'हिन्दी जाति का साहित्य'* (सन् 1986) नित्यानन्द तिवारी की पुस्तक *'आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध'* (सन् 1994) और सुमन राजे का *'हिन्दी का आधा इतिहास'* (सन् 2003) एवं उनकी अन्य रचनाओं के कई निबन्धों में भी साहित्य के इतिहास दर्शन की समस्या पर विचार किया गया है। आगे हम इन विद्वानों की मान्यताओं को समझने का प्रयास करेंगे।

3.3.1. साहित्य का इतिहास दर्शन और नलिन विलोचन शर्मा

नलिन विलोचन शर्मा ने सन् 1960 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से प्रकाशित अपनी पुस्तक *'साहित्य का इतिहास दर्शन'* के माध्यम से हिन्दी में पहली बार इतिहास दर्शन पर व्यवस्थित तरीके से विचार करने की परम्परा शुरु की। सोलह अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने प्राच्यविदों द्वारा इतिहास और साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में फैलाई गई भ्रान्त धारणाओं का तर्कपूर्वक खण्डन करते हुए भारतीय इतिहास चिन्तन पद्धति का निरूपण किया। पुस्तक के पहले अध्याय *'इतिहास दर्शन : भारतीय दृष्टिकोण'* में नलिन जी ने मैकडानेल, पार्जिटर आदि पश्चिमी इतिहासकारों को उद्धृत करते हुए बताया है कि 'प्राच्य विद्या के विद्वानों के अनुसार प्राचीन भारतीयों ने अपने अतीत का इतिहास प्रस्तुत नहीं किया है। कारण उनमें ऐतिहासिक विवेक था ही नहीं।' नलिन जी को यह धारणा आश्चर्यजनक लगती है कि 'भारतीय इतिहास के पाश्चात्य इतिहासकारों ने, पुराणों को अविश्वास्य घोषित करते हुए भी, इन्हीं के आधार पर राजाओं के नाम और उनका राजत्व काल निर्धारित किया है। पार्जिटर के द्वारा पुराणों से संकलित ऐसी सामग्री का महत्त्व निर्विवाद है, यद्यपि इस विद्वान् ने भी सामान्य रूप से यह कह डाला है कि प्राचीन भारत ने हमें इतिहास ग्रन्थ नहीं दिए हैं।' इसी प्रकार 'मैकडानेल और पार्जिटर' आदि प्राच्यविदों ने कल्हण की *'राजतरंगिणी'* को नजर अंदाज कर दिया। वस्तुतः भारतीयों का इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण न समझ पाने और प्रचलित पश्चिमी दृष्टि से भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा को देखने के कारण ही पाश्चात्य विद्वान भारतीय साहित्य, कला और इतिहास के प्रति एक दुर्भावना के शिकार हो गए। उन्नीसवीं सदी में इतिहास लेखन की जो प्रणाली पश्चिम में प्रचलित थी, उससे भारतीय प्रणाली सर्वथा भिन्न थी। अपनी बात के प्रमाण स्वरूप नलिन जी ने महाभारत का एक श्लोक भी उद्धृत किया है और बताया है कि 'कठिनाई, सच बात यह है कि इतिहास सम्बन्धी इसी विलक्षण दृष्टिकोण के कारण रही है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टय में मानव सभ्यता का प्रत्येक क्षेत्र अन्तर्भुक्त हो जाता है।'

नलिन जी ने पुस्तक के तीसरे निबन्ध *'साहित्यिक इतिहास की प्राचीन भारतीय परम्परा संस्कृत में'* के द्वारा यह भी बतलाया कि प्राच्यविदों ने साहित्यिक परम्परा और किंवदंतियों की उपेक्षा करके साहित्येतिहास चिन्तन को विकृतिपूर्ण बना दिया। कवियों और रचनाओं के काल-निर्धारण की समस्या का जन्म इसी कारण हुआ। कालिदास के सन्दर्भ में वे कहते हैं कि "आज तक कालिदास का समय निश्चित नहीं कर पाए हैं तो इसका कारण यही है कि वे उन्हें ई.पू. 57 के विक्रम का समकालीन मानने से इनकार करते रहे हैं, यद्यपि निश्चित परम्परा यही है। भाषा और शैली जैसे तथाकथित अन्तः साक्ष्यों और अनेक बहि–साक्ष्यों के चक्कर में पड़कर कालिदास का समय सदा के लिए असमाधेय हो गया है।" उनका मानना है कि इस समस्या को किंवदन्तियों, संस्कृत सुभाषितों का संग्रहण और विश्लेषण करके सुलझाया जा सकता है। संस्कृत साहित्य में सुभाषितों की समृद्ध परम्परा थी। नलिन जी ने इस पुस्तक में 482 सुभाषित संग्रहों की तालिका भी प्रस्तुत की है और बतलाया है कि इन संग्रहों में शामिल किसी भी कवि का साहित्येतिहास में उल्लेख नहीं मिलता, जिससे ज्ञात होता है कि कितनी विपुल साहित्य राशि साहित्येतिहास लेखन से बाहर है। जबकि सुभाषित लेखन की परम्परा प्राकृत तक निर्बाध रूप से चली आई है।

नलिन जी ने जहाँ एक ओर पाश्चात्य प्रविधि पर प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन को अनुचित बतलाया, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक साहित्येतिहास चिन्तन के विकास में पाश्चात्य विद्वानों की भूमिका को भी स्वीकार किया है। नलिन जी ने

जर्मन, फ्रेंच, अंगरेजी, रूसी, पोलिश और चेक जैसे देशों के साहित्यिक इतिहास सम्बन्धी धारणाओं का विस्तार से परिचय इस पुस्तक में दिया है। तदुपरान्त हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण पर अपना मत अभिव्यक्त किया है। जिसके अन्तर्गत उन्होंने गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्र बन्धुवों, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामशंकर शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि से विचार किया है।

नलिन जी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा की चर्चा करते हुए 'गार्सा द तासी' के महत्त्व का उल्लेख करने के बावजूद साहित्येतिहास के क्षेत्र में हिन्दी का पहला प्रयास शिवसिंह कृत, *'शिवसिंह सरोज'* नामक वृत्त संग्रह को मानते हैं और युग विभाजन, पृष्ठभूमि-निर्देश, सामान्य प्रवृत्ति निरूपण, तुलनात्मक आलोचना, रचना के मूल्यांकन सम्बन्धी प्रयास तथा विवेचन की साहित्यिकता के दृष्टिकोण के आधार पर हिन्दी का पहला इतिहास ग्रियर्सन की पुस्तक *'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान'* को मानते हैं।

नलिन जी हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में विधेयवादी प्रणाली के सूत्रपात का श्रेय ग्रियर्सन को देते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है कि 'हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए विधेयवादी प्रणाली के विनियोग के प्रवर्तन के जिस श्रेय का अधिकारी पं. रामचन्द्र शुक्ल अपने को मानते हैं, वह वस्तुतः ग्रियर्सन को प्राप्य है।' आचार्य शुक्ल ने पश्चिमी इतिहास लेखन में प्रचलित विधेयवाद को थोड़े नएपन के साथ अपनाया था। परिणामतः उन्हें मार्क्सवादी प्रगतिवादियों से अभूतपूर्व मान्यता मिली। उनकी दृष्टि में इतिहास लेखन की परम्परा को आचार्य शुक्ल के बाद नई राह हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रदान की। उन्होंने विधेयवादी प्रणाली को छोड़कर 'साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों और उसके मूल और वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट परिचय देना ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस प्रकार द्विवेदी जी हिन्दी में पहली बार, कदाचित समस्त भारतीय भाषाओं में सबसे पहले आचार्य शुक्ल के द्वारा प्रवर्तित, विधेयवादी साहित्येतिहास से भिन्न, साहित्यिक साहित्येतिहास लिखने के अधिकारी सिद्ध होते हैं।

नलिन जी ने इतिहास, शोध और आलोचना को एक दूसरे में अन्तर्भुक्त कर दिए जाने की प्रवृत्ति का भी विरोध किया है। उनका स्पष्ट मानना है कि 'इतिहास सम्पूर्ण विस्तार का सर्वेक्षण, अनुशीलन और मूल्यांकन है; शोध विस्तार के खण्ड-खण्ड का उद्घाटन और विश्लेषण करता है; और आलोचना पथ चिह्नों पर प्रकाश केन्द्रित करती है। तीनों एक दूसरे के लिए आवश्यक और पूरक होते हुए भी स्वतन्त्र महत्त्व के अधिकारी हैं।' विस्तार को साहित्यिक इतिहास की भी कसौटी मानते हुए नलिन जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'साहित्यिक इतिहास का विषय भी यदि विस्तार है, तो महान लेखकों से अधिक महत्त्व उन गौणों (Minors) का है, जिनसे विस्तार निर्मित हुआ है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में इन महान गौणों की उपेक्षा हुई है और इसका कारण यह है कि शोध ने अपने वास्तविक कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है।' संस्कृत के हजारा साहित्य का महत्त्व वे इसी कारण मानते हैं कि इससे वह साहित्य सुरक्षित हो सका जो पुस्तकाकार प्रकाशित होने से वंचित रह गया। नलिन जी ने *'हिन्दी साहित्य की महान परम्पराएँ' 'साहित्यिक इतिहास के शेष पक्ष'* जैसे निबन्धों में इतिहास और परम्परा के सम्बन्ध, साहित्यिक इतिहास और जनरुचि, प्राचीन काव्यों की प्रामाणिकता, लोकवार्ता का साहित्येतिहास लेखन में महत्त्व आदि विषयों पर भी विचार किया है।

3.3.2. जातीय साहित्य की समस्याएँ और इतिहास लेखन

रामविलास शर्मा हिन्दी उन प्रमुख आलोचकों में शामिल हैं जिन्होंने भाषा, साहित्य और उनसे जुड़े पक्षों पर मार्क्सवादी ढंग से विचार किया है। सन् 1984 में प्रकाशित *'हिन्दी जाति का साहित्य'* तथा *'भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ'* पुस्तकों से उनके साहित्येतिहास सम्बन्धी मान्यताओं का पता चलता है। इन पुस्तकों के अलावा अनेक निबन्धों में भी उन्होंने इस पक्ष पर विचार किया है। इसके साथ ही उन्होंने दर्शन के इतिहास पर *'इतिहास दर्शन'* नाम से एक पुस्तक लिखी है। उन्होंने जाति के सवाल के सन्दर्भ में ही साहित्य से सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार किया है। रामविलास शर्मा ने जाति का सम्बन्ध भाषा से जोड़ा है। उनके अनुसार किसी भी भाषा साहित्येतिहास लेखन के लिए दो बुनियादी शर्तों को पूरा करना जरूरी है। *पहली*, दूसरी भाषाओं के साहित्यिक विकास और उनके अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान। भले ही वे भाषा को जाति का आधार बताते हैं, किन्तु वे इसे किसी दूसरी जाति से पृथक नहीं मानते हैं। उनका मानना था कि भारत में बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकास मानव समाज के लिए विशिष्ट उपलब्धि है। अतः साहित्य के इतिहास के लिए भाषाओं के आधार पर बनी जातीयताओं के आपसी सम्बन्ध की पहचान अत्यन्त जरूरी है। इतिहासकार चाहे मार्क्सवादी हो अथवा गैर मार्क्सवादी यदि वह भारतीय साहित्य का इतिहास लिखता है तो उसे विभिन्न भाषाओं के साहित्य के आपसी सम्बन्धों पर ध्यान देना होगा; और यदि उसे किसी एक भाषा का साहित्य लिखना हो तो भी अन्य भाषाओं के साहित्य में स्थापित सम्बन्धों पर ध्यान देना होगा। वास्तविकता यह है कि भारत की किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास सही ढंग से अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही लिखा जा सकता है। रामविलास शर्मा ने साहित्येतिहास लेखन के लिए जिस *दूसरी* धारणा की आवश्यकता बतलाई, वह है उस जाति और भाषा के विकास के सम्बन्ध का ज्ञान। जैसे, हिन्दी भाषा का विकास हिन्दी जाति के साथ हुआ। अतः हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी जाति के इतिहास से निरपेक्ष नहीं हो सकता है। ये इतिहास सम्बन्धी वही धारणाएँ हैं जो रामविलास शर्मा को आधुनिक साहित्य में महत्त्वपूर्ण बनाती है।

3.3.3. साहित्य के इतिहास की मार्क्सवादी दृष्टि

मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह ने हिन्दी आलोचना में उस समय हस्तक्षेप किया जब स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात साहित्य और आलोचना में कलावादी प्रभाव उभरने लगे थे, किन्तु प्रगतिवादी आलोचना यान्त्रिकता का शिकार होकर न तो नई रचनाशीलता के साथ न्याय कर पा रही थी और न ही कलावाद के तरफ से उठाए जा रहे सवालों का वैचारिक जवाब दे पाने में सक्षम हो पा रही थी। ऐसी स्थिति में नामवर सिंह ने कलावाद के साथ इस वैचारिक संघर्ष को आगे बढ़ाने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी का निर्वहन किया और 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' को 'आधुनिक इतिहास शिल्पी शक्तियों' के अस्त्र के रूप में व्याख्यायित किया। उनकी पुस्तक *'इतिहास और आलोचना'* (सन् 1957) में छपे लेख *'इतिहास में लोक-साहित्य', 'इतिहास का नया दृष्टिकोण', 'हिन्दी साहित्य के इतिहास पर पुनर्विचार', 'इतिहास और आलोचना'* आदि इस बात के प्रमाण के तौर पर याद किए जा सकते हैं।

नामवर सिंह का मानना है कि इतिहास का पहली बार व्यापक स्तर पर प्रयोग स्वतन्त्रता संग्राम में हुआ। वस्तुतः ब्रिटिश काल में 'विदेशियों के विरुद्ध अपने को श्रेष्ठ साबित करने की आकांक्षा हुई। वर्तमान तो उनका दास था, इसलिए अतीत का

सहारा लिया गया।' लेकिन इस प्रक्रिया में इतिहास तथ्य संग्रहण, सूचनाओं और काव्य उदाहरणों का भी पर्याय बनता चला गया। जबकि आवश्यकता साहित्य के इतिहास को सामजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के बीच से उभरते जीवन्त कार्यकलाप के रूप में देखने और व्याख्यायित करने की थी।

नामवर सिंह यह स्वीकार करते हैं कि आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-साहित्येतिहास लेखन की बेजान परम्परा को सजीव बना दिया। उन्होंने भले ही *'मिश्रबन्धु विनोद'* की सहायता ली, 'लेकिन उनका मन तथ्यों की छानबीन की ओर उतना रमा नहीं। उनकी रस दृष्टि तथा विवेचनशील प्रतिभा कवियों के मूल्यांकन में अधिक खुली। कवियों के जीवन वृत्त, ग्रन्थ सूची आदि से आगे बढ़कर उन्होंने कवियों के साहित्यिक सामर्थ्य का उद्घाटन किया... कुल मिलाकर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल को जो इतिहास पंचांग रूप में प्राप्त हुआ था उसे उन्होंने मानवीय शक्ति से अनुप्राणित कर दिया।' फिर भी आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि की भी कुछ सीमाएँ हैं। उन्होंने अनेक स्थानों पर विधेयवादी पद्धति के आधार पर जिस तरह रचनाकारों के समय को साहित्यिक कृतियों के आधार पर व्याख्यायित करने की कोशिश की है, वह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती है। जैसे, भक्त कवियों को मुसलमानी शासन की दासताजन्य निराशा से उत्पन्न बताना।" लेकिन यह उनके युग के जीवन-जगत सम्बन्धी दृष्टिकोण की असंगति थी। नलिन जी के समान नामवर जी मानते हैं कि आचार्य द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के बाद साहित्येतिहास चिन्तन में एक नई परम्परा का सूत्रपात किया। उन्होंने पूर्ववर्ती व्यक्तिवादी इतिहास-प्रणाली के स्थान पर सामाजिक अथवा जातीय ऐतिहासिक प्रणाली के आधार पर *'हिन्दी साहित्य की भूमिका'* लिखकर विधेयवादी चिन्तन के कारण उत्पन्न हुई रिक्तता को पूरा करने का प्रयास किया। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के उद्गम स्थलों का पता देते हुए रूढ़ि और नवीनता के ह्रास-विकास का संक्षिप्त रचनात्मक कोष है। किन्तु द्विवेदी जी के भाववादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण की भी अपनी सीमाएँ हैं।

नामवर सिंह ने पाँचवें दशक के हिन्दी साहित्य की स्थितियों पर विचार करते हुए बतलाया कि इस दौर में इतिहास को तटस्थता और निष्पक्षता के नाम पर तथ्यपरक और दृष्टिकोण रहित बनाने की कोशिश की गई। जबकि मानव इतिहास की प्रवाहमान धारा में धारा और किनारा सब कुछ मनुष्य ही है; तटस्थ कोई नहीं। जो विरोधी धाराओं के संघर्ष से घबड़ाकर निष्पक्षता में विश्राम करना चाहता है वह प्रवाह पतित होकर अनजाने ही इतिहास विरोधी धारा में जा पड़ता है। इसके अलावा उन्होंने विस्तार से साहित्यिक इतिहास के लिए ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण और द्वन्द्वात्मक प्रणाली अर्थात मार्क्सवादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाने पर बल दिया। साथ ही हिन्दी में इस तरह के प्रयास की क्या सीमाएँ रही हैं, उनकी भी विस्तार से चर्चा की है। आम तौर पर यह माना जाता है कि साहित्य के वस्तु पक्ष को ही मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि महत्त्व देती है, लेकिन उन्होंने यह दिखाया कि 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' साहित्य के इतिहास में विषय वस्तु के ही परिवर्तन की कुंजी नहीं देता, बल्कि रूप तत्त्व के विकास का भी सूत्र बताता।

3.3.4. साहित्येतिहास विरोधी दृष्टिकोण की पहचान

नलिन विलोचन शर्मा के बाद समग्रता में हिन्दी साहित्येतिहास दर्शन पर विचार करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने *'साहित्य और इतिहास दृष्टि'* (सन् 1981) नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। *'साहित्येतिहास लेखन की सैद्धान्तिक समस्याएँ'* नामक पहला खण्ड सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बद्ध है और दूसरा खण्ड *'हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की दिशाएँ'* बताते हुए लिखा गया है। पुस्तक के सैद्धान्तिक खण्ड में *'साहित्य का इतिहास क्या है'*, '*समकालीन इतिहास*

विरोधी साहित्य चिन्तन', 'संरचनावाद और साहित्य का इतिहास' 'साहित्य का इतिहास और शैलीविज्ञान' और *'आलोचना और इतिहास'* शीर्षक अध्याय हैं। दूसरे खण्ड में *'साहित्य के सामाजिक आधार की खोज', 'परम्पराओं की निरन्तरता का अनुशीलन', 'जातीय साहित्य की प्रगति की पहचान', 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ'* नामक अध्याय हैं; जिसके अन्तर्गत क्रमशः रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा की इतिहास दृष्टि के बहाने इतिहास लेखन सम्बन्धी चिंतन का उद्घाटन करना लेखक का अभीष्ट रहा है।

सन् 1960 के आसपास हिन्दी साहित्य और समाज में जिस नए किस्म के रूपवाद और सौन्दर्यवाद का प्रचार शुरु हुआ था उनकी जड़े पश्चिमी आलोचना में विद्यमान थीं। साहित्य को समाज, इतिहास और परम्परा से काटकर शुद्ध सौन्दर्य की खोज की जा रही थी। शाश्वतता और सार्वभौमिकता को साहित्य में मूल्य की तरह बरता जा रहा था। संरचनावादी और उत्तर-संरचनावादी वैचारिकी के प्रभाव में साहित्य को सिर्फ भाषिक संरचनात्मक निर्मिति मानते हुए साहित्य के रूप सम्बन्धी परिवर्तनों को ही साहित्यिक परिवर्तन की कसौटी बना देने पर जोर बढ़ा था। कुल मिलाकर पुराने क़िस्म के रीतिवादी और नए क़िस्म के आधुनिकतावादियों का दिलचस्प गठजोड़ साहित्य के इतिहास और साहित्य के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण के खिलाफ सक्रिय था। साहित्य विरोधी इन तरकीबों को नकारते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने साहित्य की सामाजिकता के सन्दर्भ में इतिहास-दृष्टि का प्रतिपादन किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि 'साहित्य के स्वरूप और विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से समझने पर ही व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में साहित्य की क्रान्तिकारी भूमिका को पहचाना जा सकता है।' और बगैर ऐतिहासिक ज्ञान के न तो साहित्य का मर्म समझा जा सकता है और न ही उसकी रूपगत विशिष्टता को। उन्होंने साफ तौर पर कहा कि संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में शासक वर्ग के प्रतिनिधि और सेवक बुद्धिजीवी ही रूपवाद और आधुनिकता के नाम पर साहित्य को समाज और इतिहास से पृथक बताते हैं। साहित्य के जनपक्ष को जीवित रखने के लिए इन पुरानपन्थियों, आधुनिकतावादियों और रूपवादियों के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष तेज करना आवश्यक है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इतिहासकार इतिहास लेखन की प्रक्रिया में, जिनसे लेखक वैचारिक रूप से पूरी तरह सहमत नहीं होता है, उनके भी विचारों के प्रति पूरा आदर देते हुए संक्षेप में उस पूरी विचार प्रक्रिया को पाठक के सामने स्पष्टता के साथ रख कर ही उसपर अपनी राय कायम करता है। इसी तरह वह, इतिहास दर्शन सम्बन्धी समकालीन बहसों को भी सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करने की जरूरत समझता है। जैसे रामचन्द्र शुक्ल पर विधेयवाद का आरोप लगाने सम्बन्धी नलिन विलोचन शर्मा के विचार के साथ बहस हो या जातीय प्रगति की पहचान की रामविलास शर्मा की धारणा या फिर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के लेखन को मोहभंग के मुहावरे में अभिव्यक्त करने की नामवर सिंह की धारणा ; इतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन की प्रक्रियाएँहमेशा समकालीन विचारधाराओं से प्रभावित होती है।

3.3.5. साहित्य इतिहास की स्त्री दृष्टि

हाल के दशकों में इतिहास लेखन सम्बन्धी चिन्तन में अस्तित्त्ववादी विमर्शों के कारण नये इतिहास लेखन की माँग बड़ी है। वर्तमान स्त्री-दलित सवालों ने इतिहास सम्बन्धी चिन्तन को गहराई से प्रभावित किया है। इस सन्दर्भ में चर्चित लेखिका सुमन राजे के इतिहास सम्बन्धी लेखन पर विचार किया जा सकता है। सुमन राजे ने हिन्दी साहित्य के इतिहास

लेखन को एक नई दृष्टि प्रदान की और वह दृष्टि है– स्त्री दृष्टि। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी चार पुस्तकें लिखीं–

1. *साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप* (सन् 1975)
2. *साहित्येतिहास : आदिकाल* (सन् 1976)
3. *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास* (सन् 2003)
4. *इतिहास में स्त्री* (सन् 2012) मृत्यूपरान्त

अन्तिम दोनों पुस्तकों में वह इतिहास में स्त्री के स्थान की तलाश करती हैं। चूँकि पिछले कुछ दशकों में जब इतिहास में सबाल्टर्न को जगह मिलना शुरू हुआ, स्त्री विमर्श केन्द्र में आया। सुमन राजे भी इसी क्रम में अपने साहित्य इतिहास चिन्तन में स्त्री को विशेष महत्त्व देती हैं और हिन्दी साहित्येतिहास के समानान्तर हिन्दी स्त्री साहित्य इतिहास का निर्माण करती हैं। वह लिखती हैं कि 'साहित्य लेखन की एक अवच्छिन्न धारा रही है, आवश्यकता है उसे खोज निकालने की।'

प्रायः स्त्रीवादी विचारकों ने इतिहास पर आरोप लगाया है कि 'इतिहास पुरुषों का इतिहास होता है; क्योंकि इतिहास अपनी प्रकृति में सामन्ती होता है और इतिहास की सामन्ती प्रकृति लेखन में कम, सामग्री चयन एवं वैचारिकी पर अधिक लागू होती है। सामग्री चयन की यह सामन्ती प्रकृति काल के साथ तथ्यों को छोड़ देती है। सुमन राजे कहती हैं कि 'काल ने कितना छोड़ा है इससे बड़ी बात यह है कि कितना बचा रह सका है। सबसे बड़ी बात तो यही है कि अवशिष्ट में से हम कितना उपलब्ध कर पाते हैं या करना चाहते हैं।' सुमन राजे के अनुसार जो अंश खाली छूट गए हैं या छोड़ दिए गए हैं उनके भराव में मिलता है महिला लेखन। सुमन राजे इस छूटे अंश को भरने के लिए महिला लेखन के ऊपर ध्यान देने पर जोर देती हैं।

4. निष्कर्ष

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य के इतिहास दर्शन सम्बन्धी चिन्तन का हिन्दी साहित्य में विकास साहित्य के नए आयामों को पहचानने और विकसित करने की आकांक्षा का परिणाम है। प्राथमिक दशा में होने के बावजूद इस दशा में अभी जितना भी काम हुआ है वह परिमाण की दृष्टि से ज्यादा भले न हो, किन्तु परिणाम की दृष्टि से अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है और आगे इस दिशा में होने वाले चिन्तन को प्रभावित करने में सक्षम भी। कई अनसुलझे प्रश्नों के जवाब आगे मिलेंगे पर उपर्युक्त काम इस दिशा में महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ की भूमिका निभाएँगे, इसमें सन्देह नहीं।